उदारता

का

सही अर्थ

मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी (रह०)

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

"ईश्वर दयावान कृपाशील के नाम से"

उदारता का सही अर्थ

यदि एक ही वस्तु को एक व्यक्ति काला कहे, दूसरा सफ़ेद,तीसरा पीला और चौथा लाल, तो संभव नहीं है कि ये चारों एक साथ सच बोल रहे हों। यदि एक ही काम को एक बुरा कहता है और दूसरा अच्छा, एक उससे मना करता है और दूसरा उसका आदेश देता है तो यह किसी तरह संभव नहीं है कि दोनों के विचार सही हों, दोनों हक़ पर हों और दोनों "हां" और "नहीं" करने के खुले अन्तर के बाद भी अपने आप में सही हों। जो व्यक्ति ऐसे विपरीतार्थक कथन की पुष्टि करता है और एक-दूसरे को काटने वाले आदेशों को सही समझता है,उसका यह कर्म दो बातों से ख़ाली नहीं होगा। या तो वह सबको ख़ुश करना चाहता है, या उसने इस समस्या के बारे में सिरे से विचार ही नहीं किया है और बिना सोचे-समझे अपने सुझाव दे डाले हैं। बहरहाल दोनों परिस्थितियाँ बुद्धि, विवेक एवं सच्चाई के विरुद्ध हैं और किसी बुद्धिमान और सत्य-प्रेमी व्यक्ति को यह शोभा नहीं देता कि वह किसी भी कारण से विभिन्न विचारवाले लोगों की पुष्टि करे।

आमतौर पर लोग इस ग़लतफ़हमी में फ़ँसे हुए हैं कि दस भिन्न-भिन्न विचारोंवाले लोगों की एक-दूसरे को काटनेवाली बातों को सही ठहरा देना उदारता और सहिष्णुता है। हालाँकि वास्तव में यह उदारता और सहिष्णुता नहीं है, बल्कि मिथ्याचार और असत्य नीति है। सहिष्णुता और उदारता के अर्थ ये हैं कि जिन लोगों की आस्थाएँ या कर्म हमारे विचार में ग़लत हैं उनको हम सहन करें। उनकी भावनाओं को देखते हुए उन पर कोई ऐसी टिप्पणी न करें, जो उनको दुख पहुँचानेवाली हो। और

उन्हें उनकी आस्थाओं से फेरने या उनके अमल से रोकने के लिए ज़ोर-ज़बरदस्ती न करें। इस तरह का संयम और इस तरीक़े से लोगों को आस्था और कर्म की आज़ादी प्रदान करना न केवल यह कि प्रशंसनीय कार्य है बल्कि विभिन्न विचारों वाले संगठनों में शांति और सुरक्षा बनाये रखने के लिए ज़रूरी है।

लेकिन यदि हम स्वयं एक आस्था और धारणा रखने के बावजूद केवल दूसरे लोगों को ख़ुश करने के लिए उनकी विभिन्न आस्थाओं की पुष्टि करें। या एक जीवन-व्यवस्था को मानते हुए किसी भिन्न जीवन-व्यवस्थाओं की पैरवी करनेवालों से कहें कि आप सभी लोग सत्य पर हैं तो इस दोग़ली विचार-अभिव्यक्ति को किसी तरह भी सहिष्णुता या उदारता नहीं कहा जा सकता। किसी कारणवश चुप रह जाने और जान-बूझकर झूठ बोलने में कुछ तो अन्तर होना चाहिए।

वास्तविक सहिष्णुता तो वह है जिसकी शिक्षा इस्लाम ने हमको दी है। हमसे कहा गया है—

> "(ऐ ईमानवालो) ये लोग ईश्वर के सिवा जिन दूसरे उपास्यों को पुकारते हैं उन्हें बुरा न कहो क्योंकि उसके जवाब में नादानी के कारण नाहक़ ये ईश्वर को गालियाँ देंगे। हमने तो इसी प्रकार हर गिरोह के लिए उसके अपने कर्म को सुहावना बना दिया है, फिर उन्हें अपने प्रभु ही की ओर पलट कर आना है, उस समय उनका पालनहार उन्हें बता देगा कि वे क्या करते रहे हैं।"
>
> (क़ुरआन, 6 : 109)

> "(और दयावान प्रभु के नेक बन्दे वे हैं) जो झूठ के गवाह नहीं बनते[1] और जब किसी बेहूदा चीज़ पर उनका

1. हर वह कर्म जो सत्यविरुद्ध हो झूठ की परिभाषा में आ जाता है। हर वह जग जहाँ शिर्क के कर्म होते हों या जहाँ नास्तिकतापूर्ण विचार व्यक्त किए जाते हों या जह

गुज़र होता है तो सज्जन आदमियों की तरह गुज़र जाते हैं।" (क़ुरआन, 25 : 72)

"कह दो कि ऐ (ईश्वर के) इंकारियो में उनकी बन्दगी (इबादत) नहीं करता जिनकी बन्दगी तुम करते हो, न तुम उसकी बन्दगी करनेवाले हो जिसकी बन्दगी मैं करता हूँ। और न मैं उनकी बन्दगी करनेवाला हूँ जिनकी बन्दगी तुमने की है, और न तुम उसकी बन्दगी करनेवाले हो जिसकी बन्दगी मैं करता हूँ, तुम्हारे लिए तुम्हारा धर्म है और मेरे लिए मेरा।" (क़ुरआन, 109 : 1-6)

"दीन (धर्म) में कोई ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं है।"

(क़ुरआन 2 : 256)

"ये वे लोग हैं जिन्हें उनका प्रतिदान दुगना दिया जाएगा, क्योंकि वे जमे रहे और वे भलाई के द्वारा बुराई को दूर करते हैं और जो कुछ रोज़ी हमने उन्हें दी है, उसमें से ख़र्च (दान) करते हैं और जब वे व्यर्थ बात सुनते हैं तो यह कहते हुए उससे किनारा खींच लेते हैं कि: हमारे लिए हमारे कर्म हैं और तुम्हारे लिए तुम्हारे कर्म हैं। तुमको सलाम है, जाहिलों से हम मतलब नहीं रखते।"

(क़ुरआन, 28 : 54-55)

"अत: (उन्हें सत्य की ओर) बुलाओ और जैसा कि तुम्हें हुक्म दिया गया है स्वयं क़ायम रहो, और उनकी इच्छाओं

अश्लीलता और बेशर्मी का कार्य होता हो या जहाँ अत्याचार और दुराचार किया जाता हो वहाँ वास्तव में झूठ पर अमल होता है। जहाँ किसी इंसान या अन्य चीज़ को ईश्वर बनाकर इंसान उसकी उपासना करता हो वहाँ भी झूठ के सिवा कुछ नहीं होता। यह झूठ का व्यापक अर्थ है और इस झूठ के गवाह न बनने से तात्पर्य यह है कि ईमानवाला ऐसे स्थानों पर जानबूझकर न जाएगा कि उन कृत्यों को देखे और उनका गवाह (साक्षी) बने।

का कदापि पालन न करना और कह दो : ईश्वर ने जो किताब अवतरित की है, मैं उस पर ईमान लाया हूँ। मुझे तो आदेश हुआ है कि मैं तुम्हारे बीच में न्याय करूँ। ईश्वर ही हमारा भी पालनहार है और तुम्हारा भी। हमारे लिए हमारे कर्म हैं और तुम्हारे लिए तुम्हारे कर्म। हममें और तुममें कोई झगड़ा नहीं। ईश्वर हम सबको (प्रलय के दिन) इकट्ठा करेगा और अन्ततः उसी की ओर जाना है।" (क़ुरआन 42 : 15)

"अपने प्रभु के मार्ग की ओर तत्वदर्शिता और सदउपदेश के द्वारा बुलाओ और उनके साथ उत्तम तरीक़े से वाद-विवाद करो।" (क़ुरआन 16 : 125)

यही वह सहिष्णुता और रवादारी है जो एक सत्यवादी सच्चा और सरल स्वभाव व्यक्ति अपना सकता है। वह जिस मत को सही समझता है, उस पर वह मज़बूती के साथ क़ायम रहेगा। अपनी धारणाओं की स्पष्ट शब्दों में घोषणा करेगा। दूसरों को उस धारणा की ओर बुलाएगा भी, परन्तु किसी का दिल न दुखाएगा,किसी के लिए अपशब्द का प्रयोग नहीं करेगा, किसी की आस्थाओं पर चोट न करेगा, किसी की इबादतों या कर्मकांड़ों में बाधा न डालेगा, किसी को बलात् अपने मत या पंथ पर लाने की कोशिश नहीं करेगा।

लेकिन सत्य को सत्य समझते हुए सत्य न कहना, या मिथ्या को मिथ्या मानते हुए सत्य कह देना, यह तो कभी भी किसी सच्चे आदमी का काम नहीं हो सकता। और ख़ासतौर पर लोगों को ख़ुश करने के लिए ऐसा करना तो बहुत ही घिनौना काम है। ऐसी ख़ुशामद या चापलूसी न केवल नैतिक दृष्टि से गिरी हुई चीज़ है, बल्कि उस उद्देश्य में भी सफलता नहीं मिलती जिसके लिए इंसान अपने आपको इतना नीचे गिरा लेता है। क़ुरआन का साफ़ और सच्चा फ़ैसला है :

"न यहूदी तुमसे कभी राज़ी होने वाले हैं और न ईसाई ज़ब तक कि तुम उनके पंथ पर न चलने लग जाओ। कह दो : 'ईश्वर का मार्गदर्शन ही वास्तविक मार्गदर्शन है।' और यदि उस ज्ञान के पश्चात जो तुम्हारे पास जा चुका है, तुमने उनकी इच्छाओं का अनुसरण किया, तो ईश्वर से बचाने वाला न तो तुम्हारा कोई मित्र होगा और न सहायक।"

(क़ुरआन, 2 : 120)

झुठी सहिष्णुता और उदारता का प्रदर्शन तो राजनीतिक उद्देश्यों के लिए किया जाता है और इस दौर में इसे 'वैध' मान लिया गया है, क्योंकि पश्चिमी राजनेताओं और शासकों की कोशिशों से नैतिकता और राजनीति के बीच अलगाव की एक लम्बी अवधि बीत चुकी है लेकिन अफ़सोस तो उन शोधकर्ताओं पर होता है, जो अक़्ल से सोच-विचार किए बिना अपने धार्मिक अनुसंधान में एक अजीब दृष्टिकोण पेश करते हैं कि "सभी धर्म सच्चे हैं।" यह वाक्य आमतौर पर उन लोगों के मुँह से सुना जाता है, जिनका दावा है कि हम कोई बात उस समय तक नहीं करते और न उसे स्वीकार करते हैं जब तक उसे बुद्धि एवं विवेक की कसौटी पर परख न लें, लेकिन बुद्धि व विवेक की कसौटी का हाल यह है कि वह उनके इस अनोखे शोध को तनिक भी वज़न देने के लिए तैयार नहीं है। जिन विभिन्न धर्मों को सत्य पर होने का प्रमाण-प्रत्र प्रदान किया जाता है,उनके उसूलों में काले और सफ़ेद का खुला हुआ अन्तर पाया जाता है।

एक कहता है कि ईश्वर एक है। दूसरा कहता है कि दो हैं। तीसरा कहता है कि तीन हैं। चौथा कहता है बहुत-सी शक्तियाँ ईश्वरत्व में भागीदार हैं। पाँचवें की शिक्षा में सिरे से ईश्वर की कल्पना ही नहीं है। क्या यह संभव है कि पाँचों सच्चे हों?

एक इंसान को ईश्वरत्व के पद तक पहुँचा देता है। दूसरा ईश्वर को

खींचकर इंसानों के बीच उतार लाता है। तीसरा इंसान को उपासक एवं दास और ईश्वर को पूज्य एवं उपास्य क़रार देता है। चौथा पूज्य और पुजारी दोनों की कल्पना को नकार देता है। क्या वास्तव में इन चारों की कल्पनाएँ सही हो सकती हैं?

एक मुक्ति को केवल कर्म पर आश्रित रखता है। दूसरा मुक्ति के लिए केवल ईमान (आस्था) को काफ़ी समझता है। तीसरा ईमान (आस्था) और कर्म दोनों को मुक्ति के लिए ज़रूरी शर्त मानता है। क्या ये तीनों एक ही समय में सही हो सकते हैं?

एक की दृष्टि में मुक्ति की राह दुनिया और उसकी ज़िन्दगी के बाहर से निकलती है। दूसरे की दृष्टि में मुक्ति की राह दुनिया और उसकी ज़िन्दगी के अन्दर से गुज़रती है। क्या ये दोनों रास्ते समान रूप से सही हो सकते हैं?

ऐसी परस्पर विरोधी बातों को सत्य का प्रमाणपत्र प्रदान करने वाली वस्तु का नाम अगर बुद्धि है तो फिर परस्पर विरोधी बातों के एक साथ जमा होने को असंभव क़रार देनेवाली वस्तु का नाम कुछ और होना चाहिए।

विभिन्न धर्मों में जो बातें और विचार समान दिखाई देते हैं, अफ़सोस की बात है कि स्तरीय और संकीर्ण नज़र रखनेवाले इनकी वास्तविकता तक पहुँचने की कोशिश नहीं करते और केवल ऊपरी सतह पर निगाह डालकर कुछ ग़लत बातों को ग़लत ढंग से तरतीब देकर ग़लत परिणाम निकाल लेते हैं, हालांकि वास्तव में यह समानता एक अहम सच्चाई की ओर हमारा मार्गदर्शन करती है। यह पता देती है कि वास्तव में ये सभी धर्म एक ही मूल से निकले हैं। इन समस्त कल्पनाओं और शिक्षाओं का स्रोत एक है। ज्ञान का कोई एक माध्यम है, जिसने इंसान को विभिन्न देशों विभिन्न कालों, विभिन्न भाषाओं में इन संयुक्त सच्चाइयों से अवगत कराया।

कोई एक तत्त्वदर्शिता की बात है जो पूरब और पश्चिम की दूरी रखनेवाले और सैकड़ों एवं हज़ारों वर्षों का फ़ासला रखनेवाले लोगों को प्राप्त हुई। और इस तत्त्वदर्शितापूर्ण बात से वे सबके सब एक ही प्रकार के परिणामों तक पहुँचे। लेकिन धर्म जब अपने मूलाधार और अपने स्रोत से दूर हो गए तो कुछ बाहरी कल्पनाओं एवं कुछ अजनबी और नई धारणाओं और शिक्षाओं ने उनमें पनाह ले ली। चूंकि ये बादवाली चीज़ें उस संयुक्त स्रोत और संयुक्त तत्त्वदर्दिशतापूर्ण बात से प्राप्त चीज़ें न थीं, बल्कि विभिन्न स्वभावों, विभिन्न रुझानों और विभिन्न ज्ञानात्मक तथा बौद्धिक दर्जे रखनेवाले इंसानों की गढ़ी हुई थीं, इसलिए उन्होंने इन संयुक्त बुनियादों पर जो इमारतें खड़ी कीं वे अपने नक़्शों और अपने रंग-रूप की दृष्टि से एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न हो गईं।

अत: विभिन्न धर्मों में सत्य-शिक्षाओं की पहचान उन शिक्षाओं से हो सकती है जो सभी धर्मों में समान रूप से पाई जाती हैं न कि उन विभिन्न विस्तृत रूपों और हालतों से जिन पर विभिन्न धर्म पाए जाते हैं, क्योंकि सत्य एक बहुत व्यापक शब्द है और इसके अवयवों में भी कोई अन्तर नहीं हो सकता। जिस तरह हम काला और सफ़ेद, लाल और हरा पर 'रंग' शब्द का प्रयोग समान रूप से कर सकते हैं, उस तरह ईश्वर एक है, ईश्वर दो हैं और ईश्वर करोड़ों हैं, इन सभी विभिन्न बातों को सत्य नहीं कह सकते।

यह बात कि तमाम धर्मों का मूल एक है और एक सच्चाई है जो विभिन्न क़ौमों पर विभिन्न कालों में प्रकट की गई, क़ुरआन मजीद में स्पष्ट रूप से बयान की गई है। क़ुरआन में बार-बार कहा गया है कि हर क़ौम में ईश्वर के पैग़म्बर और सन्देष्टा आए हैं—

"हमने हर समुदाय में कोई न कोई पैग़म्बर भेजा।"

(क़ुरआन, 16 : 36)

"और जो भी समुदाय गुज़रा है, उसमें अनिवार्यतः एक सचेतकर्ता (पैग़म्बर) आया है।"

(क़ुरआन, 35 : 24)

जितने भी पैग़म्बर और सन्देष्टा ईश्वर की ओर से आए हैं, वे सभी एक स्रोत से सच्चाई का संदेश हासिल करते थे—

"(ऐ पैग़म्बर मुहम्मद!)..... तुमसे पहले भी कितने ही पैग़म्बर झुठलाए जा चुके हैं जो खुली निशानियाँ, 'ज़बूरें' और प्रकाशमान किताब लेकर आए थे।"

(क़ुरआन, 3 : 184)

"निश्चय ही हमने अपने सन्देष्टाओं को स्पष्ट प्रमाणों के साथ भेजा और उनके साथ किताब और तुला उतारी, ताकि लोग इंसाफ़ पर क़ायम हों।"

(क़ुरआन, 57 : 25)

ईश्वर के उन सभी पैग़म्बरों एवं सन्देष्टाओं का सन्देश एक ही था, और वह यह था—

"ईश्वर की बन्दगी करो और ताग़ूत (बढ़े हुए फ़सादी एवं झूठे उपास्यों) से बचो।" (क़ुरआन 16 : 36)

ईश्वर के उन सभी पैग़म्बरों पर ईश्वर की ओर से एक ही प्रकाशना आई थी—

"(ऐ पैग़म्बर मुहम्मद!) हमने तुमसे पहले जो पैग़म्बर भी भेजा, उसकी ओर यही प्रकाशना की कि, "मेरे सिवा कोई पूज्य-प्रभु नहीं।" अतः तुम मेरी ही बन्दगी करो।"

(क़ुरआन, 21 : 25)

उन पैग़म्बरों में से किसी ने यह नहीं कहा कि जो कुछ हम पेश कर रहे हैं, वह हमारी अपनी बुद्धि एवं विवेक का नतीजा है। बल्कि सब यही कहते रहे कि यह सब ईश्वर की ओर से है—

"यह हमारा सामर्थ्य नहीं कि तुम्हारे सामने कोई प्रमाण ले आएँ। यह तो बस ईश्वर के आदेश के पश्चात ही संभव है और जो ईमानवाले (आस्थावान) हैं वे तो ईश्वर पर ही भरोसा रखते हैं। आख़िर हम क्यों न ईश्वर पर भरोसा करें, जबकि उसने हमें मार्ग दिखाया है?"

(क़ुरआन 14 : 11-12)

फिर उन पैग़म्बरों में से किसी ने यह भी नहीं कहा कि तुम हमारी बन्दगी करो, बल्कि सब यही कहते रहे कि ईश्वर के उपासक और उसके भक्त बन जाओ। क़ुरआन में है—

"किसी मनुष्य का यह काम नहीं कि ईश्वर जब उसे किताब और हिकमत (तत्त्वदर्शिता) और पैग़म्बरी प्रदान करे तो वह लोगों से कहे 'तुम ईश्वर को छोड़कर मेरे उपासक बनो।' बल्कि वह तो यही कहेगा कि : ईशभक्त बनो।" (क़ुरआन, 3 : 79)

ये थीं वे समान शिक्षाएँ, जो तमाम क़ौमों को उनके धार्मिक नेताओं ने दी थीं।

क़ुरआन मजीद का बयान है कि पहले पहल तमाम इंसान एक ही समुदाय थे। अर्थात एक विशुद्ध मानवीय स्वभाव के अधीन थे। उनके पास ईश्वर की ओर से सत्य-मार्ग का ज्ञान आया हुआ था।[1] फिर उनमें मतभेद उत्पन्न हुआ। यह मतभेद इस कारण उत्पन्न हुआ कि उनमें से कुछ लोगों ने अपनी सीमाएँ लाँघनी शुरू कर दीं। उन्होंने अपने प्राकृतिक

---

1. यह तथ्य मन में बिठा लेना चाहिए कि आजकल के विकासवाद और इतिहास दर्शन के विपरीत क़ुरआन मजीद का बयान यह है कि धरती पर मानवजाति का आरम्भ अज्ञान के अंधेरों में नहीं हुआ बल्कि ईशप्रदत्त ज्ञान के प्रकाश में हुआ था। ईश्वर ने सबसे पहले मानव अर्थात आदम (अ०) को पैग़म्बर बनाया था और उनको इलहाम (प्रकाशना) के द्वारा वह ज्ञान दे दिया था जो धरती पर सही और सार्थक जीवन यापन के लिए आवश्यक था।

दर्जे से अधिक ऊँचा दर्जा हासिल करने और अपने प्राकृतिक अधिकारों से बढ़कर कुछ और अधिकार हासिल करने के लिए प्रयत्न करना शुरू कर दिया। तब ईश्वर की ओर से पैग़म्बरों के आने का सिलसिला शुरू किया गया, ताकि वे लोगों को सत्य का सही ज्ञान दें और उनके बीच सामाजिक न्याय स्थापित करें। सभी पैग़म्बरों का दुनिया में यही मिशन रहा है। जिन लोगों ने इस मिशन को स्वीकार किया और पैग़म्बरों की दी हुई शिक्षाओं की ठीक-ठीक पैरवी की और पैग़म्बरों के बताए हुए क़ानूनों पर चले, केवल वही सत्य पर हैं और शेष सभी असत्य पर हैं। वे भी असत्य पर हैं जिन्होंने ईशदूत की पैरवी से इंकार किया और वे भी असत्य पर हैं जिन्होंने ईशदूत की शिक्षाओं को अपनी इच्छानुसार ढाल लिया। क़ुरआन में है—

> "वास्तव में सारे मनुष्य एक ही समुदाय थे। फिर अलग-अलग हो गए।" (क़ुरआन 10 : 19)
>
> "सारे मनुष्य एक ही समुदाय थे (उन्होंने विभेद किया), तो ईश्वर ने ईशदूतों को भेजा, जो शुभ-सूचना देनेवाले और डरानेवाले थे, और उनके साथ सत्य पर आधारित किताब उतारी, ताकि वह किताब लोगों में उन बातों का जिनमें वे विभेद कर रहे हैं, फ़ैसला कर दे। यह विभेद जो लोगों में हुआ उसकी वजह सिर्फ़ यह थी कि उन्होंने एक दूसरे पर ज़्यादती करनी चाही[1] वरना ईश्वर की ओर से तो उनके पास पहले ही स्पष्ट आदेश आ चुके थे फिर जिन

---

1. क़ुरआन में मूल अरबी शब्द 'बग़ी' प्रयुक्त हुआ है, जिस का शाब्दिक अर्थ है अपनी वैध सीमा का उल्लंघन करना, ज़्यादती और उद्दण्डता। क़ुरआन आस्था सम्बन्धी समस्त पथभ्रष्टताओं और सामाजिक अन्याय (Social Injustice) का कारण इस बात को ठहराता है कि कुछ लोगों में अपनी सीमा से बढ़ने की भावना पैदा हो जाती है। मिसाल के तौर पर कुछ इंसान दूसरे इंसानों के भगवान बन बैठते हैं

लोगों ने ईशदूतों और किताबों की बात मान ली उनको ईश्वर ने उस सत्य की राह दिखा दी जिसमें लोगों के बीच विभेद हुआ था और ईश्वर जिसको चाहता है सत्य मार्ग का सौभाग्य प्रदान करता है।" (क़ुरआन 2 : 213)

"हमने अपने सन्देश वाहकों को स्पष्ट आदेशों के साथ भेजा और उनके साथ किताब उतारी, और तराज़ू[1] दिया, ताकि लोग इंसाफ़ के तरीक़े पर क़ायम हों। और हमने लोहा उतारा, जिसमें बड़ी शक्ति भी है और लोगों के लिए लाभ भी।" (क़ुरआन 27 : 25)

"फिर जो मेरे मार्गदर्शन पर चला, वह न सीधे मार्ग से भटकेगा और न अभागा होगा और जो मेरी नसीहत से मुँह मोड़ेगा तो दुनिया में उसका जीवन संकीर्ण होगा और परलोक में हम उसे अंधा उठाएँगे।"

(क़ुरआन 20 : 123-124)

यह क़ुरआन का इतिहास के विषय में दृष्टिकोण या इतिहास की नैतिक व्याख्या (Moral Interpretation of History) है जो सामाजिक

और उनसे अपनी बन्दगी और उपासना कराते हैं। कुछ ऐसे होते हैं जो स्वयं तो भगवान बनने का साहस नहीं करते मगर किसी मूर्ति या काल्पनिक देवता या किसी क़ब्र के पुजारी या मुजाविर बन जाते हैं और उन उपास्यों के माध्यम से लोगों पर अपना अधिकार चलाते हैं। कुछ लोग धार्मिक पदाधिकारी बनकर लोगों के कल्याण और मुक्ति के ठेकेदार बनते हैं ..... कुछ लोग अपनी अच्छी आर्थिक स्थिति से अनुचित लाभ उठाकर आर्थिक लूट-खसोट के विभिन्न तरीक़े अपनाते हैं। तात्पर्य यह कि इंसान को प्राकृतिक स्थिति से निकालकर आस्थात्मक और सामाजिक रूपों से विभेद में डालने वाली चीज़ वास्तव में यही 'बग़ी' है।

1. तराज़ू से तात्पर्य वह उच्च कोटि की अत्यन्त सन्तुलित (Well Balanced) सामाजिक व्यवस्था है जे ईशविधान के रूप में ईशदूतों के द्वारा भेजी गई ताकि मनुष्यों के बीच न्याय स्थापित किया जाए।

विभेद की गुत्थियों की तरह धार्मिक विभेद की गुत्थियों को भी बड़े ही संतोषजनक तरीक़े से हल कर देती है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि दुनिया की तमाम क़ौमों के पास ईश्वर के पैग़म्बर इसी लिए आते रहे कि जिस प्राकृतिक जीवन-पथ से वे अपनी बग़ावत के कारण हट गई थीं उसी की तरफ़ फिर उन्हें ले जाएँ और उन्हें सत्य और न्याय के तरीक़े पर क़ायम कर दें। परन्तु वही बग़ावत की भावना जो उनकी गुमराही का असली कारण थी, उन्हें बार-बार हटाकर फिर टेढ़े रास्तों की तरफ़ ले जाती रही। अत: जो थोड़े बहुत सही विचार और नैतिकता के सच्चे उसूल दुनिया की विभिन्न क़ौमों में पाए जाते हैं, वे सब ईशदूतों की शिक्षाओं के ही बचे-खुचे प्रभाव हैं,जो अपनी निजी शक्ति के कारण क़ौमों के दिलोदिमाग़ और उनकी ज़िन्दगी में रच-बस गए।

इसके बाद क़ुरआन जो दावा पेश करता है वह यह है कि जिस "इस्लाम" की तरफ़ वह बुला रहा है, वह वही "मूलधर्म" है जिसको शुरू से तमाम क़ौमों में ईश्वर के सभी सन्देशवाहक और पैग़म्बर पेश करते रहे हैं। ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) कोई निराला सन्देश लेकर नहीं आए हैं जो पहले कभी पेश न किया गया हो। क़ुरआन में है—

> "ऐ पैग़म्बर उनसे कह दो कि मैं कोई निराला सन्देशवाहक नहीं हूँ।" (क़ुरआन 46 : 9)

बल्कि उनका सन्देश वही है जो ईश्वर के हर सन्देष्टा ने हर जाति तक हर काल में पहुँचाया है। क़ुरआन में है—

> "हमने तुम्हारी ओर उसी प्रकार प्रकाशना भेजी है, जिस प्रकार नूह और उनके बाद के पैग़म्बरों की ओर भेजी थी।" (क़ुरआन 4 : 163)

इस सन्देश से अरब, मिस्र, ईरान, भारत, चीन, जापान, अमेरिका, यूरोप, अफ़्रीक़ा यहाँ तक कि किसी भी भू-भाग को वंचित नहीं रखा गया। सभी जगह ईशदूत ईश्वर की किताबें लेकर आए हैं। और बहुत

संभव है कि बुद्ध, कृष्ण, राम, कन्फ्यूशियस, ज़रदुश्त, मानी, सुक़रात आदि भी उन्हीं सन्देष्टाओं में से हों। लेकिन हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) और दूसरे पेशवाओं में अन्तर यह है कि उनकी असल शिक्षाएँ तो लोगों के विभेद के कारण गुम हो गईं,मगर ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने जो कुछ पेश किया, वह असली शक्ल में सुरक्षित है।

अतः सच्चाई यह है कि इस्लाम धर्मों में से एक धर्म नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण मानव-जाति का मूल धर्म यही है। शेष सभी धर्म उसी की बिगड़ी हुई शक्लें हैं। धर्मों में जो कुछ हक़ और सच्चाई पाई जाती है वह इसी असल इस्लाम का बचा-खुचा प्रभाव है जो सबके यहाँ आया था और विभेदों में गुम कर दिया गया। जिस धर्म में इस बचे-खुचे सत्य की जितनी अधिक मात्रा मौजूद है, उसमें उतना ही अधिक 'इस्लाम' मौजूद है। रहीं वे विभेद पूर्ण बातें जो मूल इस्लाम के विरुद्ध हैं तो वे सब निश्चित रूप से मिथ्या हैं। और उन्हें सत्य ठहराना सरासर अन्याय है।

इसके बजाय कि हम झूठी सहिष्णुता और उदारता का प्रदर्शन करें हमें तो अपने तमाम इंसानी भाइयों से यह कहना चाहिए कि दोस्तो, कृपया! पक्षपात और संकीर्णता को छोड़ दो। सत्य और असत्य के घाल-मेल पर जमे रहने के बजाय उस चीज़ को स्वीकार करो जो विशुद्ध सत्य है। सत्य किसी नस्ल या क़ौम या देश की पैतृक सम्पत्ति नहीं है, बल्कि तमाम इंसानियत की संयुक्त मीरास है। यह मीरास जगत् स्वामी की ओर से सब देशों और क़ौमों और नसलों को बाँटी गई थी। दूसरों ने उसे यदि गुम कर दिया और इसके साथ सृष्टि पूजा के, अत्याचार व अन्याय के और अनुचित भेद-भाव के ज़हर मिला लिए, तो यह एक दुर्भाग्य था। हमारा और तुम्हारा सबका दुर्भाग्य था। कोई कारण नहीं कि आप इस दुर्भाग्य के साथ अनावश्यक रूप से चिमटे रहें। केवल इस वजह से कि आपके पूर्वज ऐसा करते रहे थे।

ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने यदि इस धरोहर को पाकर

जस का तस पहुँचा दिया और उसके अन्दर किसी सृष्टि पूजा का, किसी अत्याचारपूर्ण और अन्यायपूर्ण रीति-रिवाज का और किसी प्रकार के अनुचित भेद-भाव का ज़हर शामिल न हो सका, तो यह एक सौभाग्य की बात है। हमारी और आपकी और समस्त मानव जाति की यह ख़ुशक़िस्मती है। अपने स्रष्टा और पालनहार का शुक्र अदा कीजिए और उससे लाभ उठाने में केवल इसलिए न झिझकिए कि परमेश्वर की यह अनुकम्पा अरब मूल के एक व्यक्ति के माध्यम से आपको मिल रही है। सत्य तो उसी तरह की विश्वव्यापी अनुकम्पाओं में से एक अनुकम्पा है, जिस तरह हवा, पानी और रौशनी उसकी विश्वव्यापी अनुकम्पाएँ हैं। फिर यदि हवा से आप केवल इसलिए नाक बन्द नहीं कर लेते हैं कि वह पूरब से आ रही है, पानी को आप अपने हलक़ से उतारने में केवल इस आधार पर झिझक महसूस नहीं करते कि उसका स्रोत अमुक भू-भाग में स्थित है और रौशनी से लाभ उठाते समय आप केवल इसलिए नहीं झिझकते कि वह अमुक व्यक्ति के चराग़ से निकल रही है। तो आख़िर क्या कारण है कि विशुद्ध सत्य की जो अनुकम्पा आपको अरबवासी हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के द्वारा मिल रही है, उसको लेने में आप केवल इसलिए झिझक महसूस करें कि उसका पेश करनेवाला आपके भू-भाग में पैदा नहीं हुआ है। (तफ़हीमात, भाग 1, उर्दू)

—o—